अध्याय पहला

कृषक जीवनके लेखक

प्रेमचन्द

अध्याय पहला

कृषक जीवनके लेखक प्रेमचंद

मुन्शी प्रेमचंद सम्पूर्ण मानव समाजके लेखक समझे जाते हैं। इस महान कलाकार का जन्म वाराणसीसे पाँच मील की दूरीपर "लमही" गांवमें एक सामान्य परिवारमें ३१ जुलाई १८८० में हुआ।

माता-पिता ने इनका नाम प्यार से धनपतराय रखा था। इनके पिता का नाम अजायबलाल श्रीवास्तव था, तो माता का नाम आनंदी था। पिता एक डाकखाने में काम करते थे।

धनपतराय को कुल तीन बहनें थी। उसमें से दो बड़ी बहने चल बसी थी। धनपत सबसे छोटा और अकेला होने के कारण माँ का लाड़ला था। इसलिए वह अपने बेटे को कभी अपनेसे अलग होने नहीं देती थी।

उनका बचपन माँ के प्यार की शीतल छायामें बीता था। बचपनमें शरारती होनेके कारण हररोज घरपर कोई ना कोई शिकायत लेकर आता रहता था।

पाँच साल की उम्रमें लमहीसे सवा मील की दूरीपर "लालपूर" गाँव के एक मौलवी साहबके यहाँ उनकी उर्दूकी शिक्षा प्रारंभ हुई। तब वे अपने चचेरे भाई "बलभद्र" के साथ प्रातःसमय बासी रोटियाँ खाकर और दोपहर के लिए मटर और जौ का चबेना लेकर स्कूल जाया करते थे। थोड़ा बहुत पढ़नेके बाद सारा समय खेल-कुदमें बिताते थे।

जब वे आठ सालके हुये तब उनकी माता का देहांत हो गया। पिताजी हरवक्त काम में लगे रहते थे और बार-बार उनका तबादला भी होता रहता था, जिसके कारण वे अपने पुत्र की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दे सकते थे, अतः उन्हें अपने पिता के प्रेमसे वंचित रहना पड़ा। दुर्भाग्य की बात यह की, माँ के देहांत के बाद कुछ ही दिनोंमें सन् १८८८ में उनके पिताने दूसरी शादी कर ली और

आठ सालके धनपत को विमाता के निष्ठुर व्यवहार, पिता की अवहेलना, दरिद्रता के वातावरण में अपना बचपन बिताना पड़ा।

धनपतराय को बचपन से पढ़नेका शौक था। दादी की कहानियाँ सुनते-सुनते आगे चलकर उनका स्थान मोटी-मोटी किताबोंने ले लिया। वे इस शौक के बारेमें कहते हैं, ----

" रेतीपर एक बुध्दिलाल नामक बुकसेलर रहता था। मैं उसकी दुकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले-लेकर पढ़ता था; मगर दुकानपर सारे दिन तो बैठ न सकता था, इसलिए मैं उसकी दुकानसे अंग्रेजी पुस्तकोंकी कुंजियाँ और नोट्स लेकर अपने स्कूल के लड़कों के हाथ बेचा करता था और इसकी एवज में उपन्यास दुकानसे घर लाकर पढ़ता था। दो-तीन वर्षोंमें सैंकड़ोंही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यास का स्टाक समाप्त हो गया, तो मैंने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े और " तिलस्मे-होशरुबा " के कई भाग भी पढ़े। "[१]

तेरह साल की आयुमें उनका " मेरी पहली रचना " शीर्षक निबंध का प्रकाशन उर्दूमें हुआ। जिसमें " तिलस्मे-होशरुबा " पढ़ने के बाद कहानियों और किताबोंसे बढ़ी हुई अपनी दिलचस्पी का जिक्र उन्होंने किया है।

सन् १८९४ में उन्होंने " होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात " इस शीर्षक नाटक की रचना की। इसप्रकार चौदह साल की उम्रमें जब बचपन तेजी से पीछे निकल रहा था और बचपन की बहुत सारी स्मृतियाँ उनके पास थी, जो कुछ देखा था, अनुभव किया था और सहा था उससे उनमें अकाल प्रौढ़ता आ गयी थी। इसी बीच उन्होंने आठवी कक्षा पास की। उस समय उनके पिताजी का तबादला गोरखपुर से " जमनिया " गाँवमें हो गया। तब उन्हें नवें दर्जेमें नाम दाखिल करना था, जो कि बनारसमें ही संभव था। पिताजीने खर्चके बारेमें पूछा तो उन्होंने पाँच रुपये की माँग की। लेकिन उससमय की महँगाई को देखते हुए पाँच रुपयेमें खर्चा चलाना मुश्किल था। उससमय उनकी आर्थिक स्थिति अत्यंत शोषकारक थी। उनकी उस निर्धनता की स्थिति का वर्णन अमृतरायने निम्नप्रकारसे किया है, -----

" पाँव में जूते न थे। देहपर साबित कपड़े न थे। महँगी अलग - दस

१] हंसराज रहबर - प्रेमचन्द जीवन, कला और कृतित्व, पृष्ठ १२-१३, सं. १९६२।

सेर के जौ थे। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्वीन्स कालेजमें पढ़ता था। हेडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इम्तहान सिरपर था और मैं बास के फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ाकर छः बजे छुट्टी पाता। वहां से मेरा घर देहांत में पाँच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता। और प्रातःकाल आठ ही बजे घरसे चलना पड़ता था, नहीं वक्त पर स्कूल न पहुँचता। रात को खाना खाकर कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाँधे हुए था। "[१]

सन् १८९६ में पन्द्रह बरस की आयुमें उनका पहला विवाह हुआ लेकिन सास-बहू का झगड़ा होने के कारण उनकी पत्नी हमेशा के लिए मैके चली गई। सन् १८९७ में उनके पिता का देहांत हुआ और घर का सारा बोझ उन्हीं पर आ पड़ा। इसी साल उनको मैट्रिक का इम्तिहान देना था, लेकिन पिता की मृत्यु के कारण वे अपना इम्तिहान दे नहीं सके। अगले साल मैट्रिक का इम्तिहान देकर पास तो हो गए लेकिन द्वितीय श्रेणीमें। द्वितीय श्रेणी मिलनेके कारण काशी के क्वीन्स कालेजमें धनपतराय को प्रवेश मिलना एक समस्या निर्माण हो गयी क्योंकी क्वीन्स कालेजमें प्रथम श्रेणी मिलनेवालोंको ही फीस माफ हो सकती थी।

संयोगसे उसी साल " हिन्दू कालेज " निकला और ये महाशय वहाँ प्रवेश पाने के लिए गये लेकिन, वहाँ भी फीस माफ नहीं हो सकी। वहां जानेके बाद मालूम हुआ कि, अगर ये किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की सिफारीश लाये तो फीस माफ की जा सकती है। काफी घोड़दौड़ और परेशानी उठानेके बाद एक सज्जन ठाकुर इंद्रनारायणसिंह जो हिन्दू कालेज की प्रबंधकारिणी सभा में थे उनसे सिफारीश पत्र ले आये। सिफारीश तो मिल गई लेकिन योग्यताकी जाँच की गई तब धनपतराय बीजगणितमें फेल हो गये, जिसके कारण प्रिन्सिपल से मिला मिले वे निराश होकर खाली हाथ लौट आये। पढ़नेकी इच्छा तो थी। गणिताको सुधारकर कालेजमें भर्ती हो जाना तो चाहते थे और इसिलिए शहरमें

१] अमृतराय - प्रेमचन्द कलम का सिपाही, पृष्ठ ३३, प्रथम संस्करण १९६२।

रहना जरूरी था। सौभाग्यसे मासिक पाँच रुपये वेतनपर एक वकील के लड़के को पढ़ानेका काम उन्हें मिल गया। उन पाँच रुपयोंमें से तीन रुपये घर भेजते थे। दो रुपये अपने खर्चके लिए रखते थे। दो रुपयोंमें खर्चा चलाना बहुतही मुश्किल था। अत: कभी-कभी किसी महाजन से उधार लेकर अपना काम चलाते थे। एक दिन महाजन ने भी उधारी देनेसे इन्कार किया तब वे अपनी किताब बेचने चले गये और दो रुपयेकी किताब एक रुपयेमें बेचकर लौट आ रहे थे तो उस दुकान पर बैठे हुए चुनार के मिशन स्कूल के हेडमास्टरने उन्हें बुलाया, जिन्हें एक मैट्रीक पास मास्टर की जरूरत थी। धनपतराय को इस बारेमें पूछनेपर वे तुरन्त राजी हो गये और मासिक अठारह रुपये वेतनपर उन्होंने सन् १८९९ में मिशन स्कूलमें नौकरी स्वीकार कर ली। चुनार गाँवमें पाँच-छ महिने ही नौकरी की। उसी स्कूल के एक मौलवी साहबके साथ स्कूलके अधिकारी बेइंसाफी कर रहे थे यह देखकर उन्होंने मौलवी साहबका साथ दिया, जिसके कारण उन्हें नौकरीसे हाथ धोना पड़ा।

चुनार से निकलकर धनपतराय नये काम की तलाशमें वाराणसी पहुँच गये। वहां वे क्वीन्स कालेजके प्रिन्सिपल, जो पूर्व परिचित थे, उनसे मिलने गये। बेकन साहब के प्रयत्नसे उन्हें बहराइच के जिला स्कूलमें मास्टर की नौकरी मिली। लेकिन वहां से ढाई महिने बाद उनका तबादला प्रतापगढ़ हो गया और प्रतापगढ़ के जिला स्कूल में फर्स्ट एड्डिशनल मास्टर का काम उन्होंने सम्हाला। वेतन बीस रुपये था जो कि, घर भेजकर खर्चे के लिए पूरा न होता था। इसलिए वहां भी वे ठाकुर साहब के दो लड़कोंको पढ़ाते थे और उन्हीं के यहां रहते थे। अबतक उन्होंने अनमेल विवाह, नारी की दुर्दशा, सामाजिक कुरितियों आदि पर अनेक कहानियाँ पढ़ी थी, परंतु अब वे ऐसे विषयोंपर लिखना चाहते थे जिससे इस मुर्दा समाजमें कुछ हरकत पैदा हो सके।

उससमय आर्यसमाज का काफी बोलबाला था। प्रचारक लोग जगह-जगह सभाएँ लेते थे। बालविवाह के दुष्परिणाम, अनमेल विवाह तथा विधवा विवाह आदि विषयोंपर इन सभाओंमें व्याख्यान दिया करते थे। इन व्याख्यानोंको सुनकर वे आर्यसमाज की ओर खिंचते चले गये इसका कारण यह था कि, आर्यसमाज जिन बुराइयोंके खिलाफ लड़ रहा था उन सब बुराईयोंका सामना वे अपनी जिन्दगी में कर रहे थे।

सन् १९०१ में उन्होंने एक ऐतिहासिक "रूठी रानी" नामक उपन्यास लिखा इसमें उन्होंने भारतके परम्परागत आदर्श, शौर्य, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति आदि गुणों का वर्णन करते हुए यह बताया है कि, इन विशेषताओं के होते हुए भी पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण हमारे पूर्वज दासता और विनाश से स्वयं को बचा नहीं सके।

उन दिनों मास्टरीके लिए ट्रेनिंग आवश्यक था और ट्रेनिंग कालेज सिर्फ इलाहाबादमें ही था। अत: सन् १९०२ में उन्होंने इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेजमें नाम दाखिल किया। इन्हीं दिनों उनका एक छोटासा उपन्यास "असरारे मआबिद" [देवस्थान रहस्य] के नाम से बनारस के एक साप्ताहिक उर्दू पत्र " आवाज-ए-खल्क " में धारावाहिक रूप से छपना शुरू हुआ।

सन् १९०४ में उन्होंने प्रथम श्रेणीमें ट्रेनिंग पास कर ली। इसके बाद ३० अप्रैल १९०४ को वे इलाहाबाद से प्रतापगढ़ वापस आ गये। प्रतापगढ़ से नौं महिने के बाद ही इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज के प्रिन्सिपल जे. पी. कम्पस्टर ने उन्हें ट्रेनिंग कालेज से लगे हुए माइल स्कूल का हेडमास्टर बनाकर फिर इलाहाबाद बुला लिया। वहां से भी तीन महिने बाद उनका तबादला कानपुर हो गया। वेतन पचीस रूपये था और डिस्ट्रिक्ट स्कूलमें आठवें मास्टर के पदपर उन्हें नियुक्त किया गया।

सन् १९०४ में ही उन्होंने "हमखुर्मा व हमसवाब" नामक उपन्यास लिखा। जिसका आगे चलकर "प्रेमा" नामसे हिन्दीमें प्रकाशन हुआ।

सन् १९०५ में इलाहाबाद से कानपुर आनेपर मुंशी दयानारायण निगमजीने उन्हें अपने यहां ठहरने के लिए आमंत्रित करनेपर वे उन्हींके यहां रहने लगे। निगमजी के घरपर हररोज शायर महफिल जम जाती थी और उसमें दुनियाकी सभी घटनाओं पर चर्चा होती रहती थी। वे संकोची स्वभाव के होने के कारण अजनबीयोंके साथ मुश्किल से बातें करते थे, लेकिन दोस्तोंके साथ हँसते और हँसाते भी थे और शेर भी सुनवाते थे।

मुंशी दयानारायण निगम एक बहुतही सज्जन और उदार प्रकृतिके, मेहनत और ईमानदारी से काम करनेवाले "जमाना" पत्र के संपादक थे। धनपतराय का दुनियादारी से कम वास्ता था, पहलू बचाकर काम करना शायद उन्होंने सीखा ही नहीं था। इन दोनों के स्वभावमें यह अंतर होते हुए भी दोनोंमें गहरे संबंध स्थापित

हो गये थे और ये संबंध अंततक बने रहे। ये दोनों एक दूसरे की कद्र भी करते थे। दयानारायण के लिए धनपतराय एक प्रतिभाशाली लेखक थे, तो धनपतराय के लिए दयानारायण एक अच्छे संपादक। यहां से धनपतरायके साहित्यिक जीवन की शुरुआत हो जाती है।

कानपुर से गर्मियों की छुट्टिमें धनपतराय अपने घर " लमही " चले गये तो उन्हें कानपुर की सारी स्मृतियाँ याद आती रही। कानपुर का जीवन सुंदर और रम्य था, वहां हररोज शामको दोस्तों की महफिले हुआ करती थी। घर आनेपर उन्हें घर की सारी परेशानियाँ घेर लेती थी। गर्मियों की छुट्टी खत्म होनेपर ये फिर कानपुर आ गये और फिर दोस्तोंकी महफिले शुरू हुई। पन्द्रह साल की आयुमें हुई शादीके कारण उन्हें बड़ा दु:ख पहुँचा था और इस समय तक उससे नाता भी टूट गया था। अब उनकी चाची [विमाता] दुबारा शादी करनेके लिए उनके पीछे पड़ी थी। हररोज घरमें शादी की बात चलती थी, लेकिन वे किसी विधवा से शादी करना चाहते थे। चाचीको यह बिल्कुल पसंद नहीं था। तभी एक दिन अखबारमें बरेली के आर्यसमाजी शंकरलाल क्षेत्रिय के पर्चेमें छपे हुए इश्तहार पर इनकी नजर पड़ी। उस इश्तहार में लिखा था,-----

" मौजा सलेमपुर डाकखाना कनवार जिला फतेहपुर के कोई मुंशी देवीप्रसाद अपनी बाल विधवा कन्या का विवाह करना चाहते हैं और जो सज्जन चाहें इस विषयमें उक्त पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। "[१]

इश्तहार पढ़कर उन्होंने उस पतेपर खत लिखा और उसके जवाब में खतके साथ पचीस-तीस पन्नोंका "किताबचा" आया। मुंशी देवीप्रसाद अपने गाँव के एक प्रतिभाशाली, प्रभावशाली व्यक्ति थे, धन की कमी थी, मगर इज्जत बहुत थी। उनके तीन लड़के और दो लड़कियाँ थी। दोनों लडकियों की शादी बचपनमें ही हुई थी। लेकिन छोटी लड़की शिवरानी देवी शादी के तीन महिने बाद ही विधवा हो गई थी। फिर भी समाज में सिर्फ शादी हो जानेके कारण,उसपर विधवा का सिक्का लग चुका था। देवीप्रसादजी से अपनी बेटी की यह हालत देखी नहीं जाती

१] अमृतराय - प्रेमचन्द कलम का सिपाही, पृष्ठ ७४, प्रथम संस्करण १९६२।

थी। अत: उन्होंने बहुत कुछ सोचने बाद अपनी बेटी का फिरसे ब्याह करनेका फैसला किया। उससमय विधवा का ब्याह करना समाजके खिलाफ था। इसी कारण उन्होंने इश्तहार छपवाकर लोगोंको मालूम कर दिया कि, मुंशी देवीप्रसाद अपनी बेटी का ब्याह फिर से कर रहे हैं। उस इश्तिहार में देवीप्रसादजीने विधवा पुनर्विवाह के लिए शास्त्रों के आधार का प्रमाण देकर विधवा पुनर्विवाह संभव हैं, यह सिध्द कर दिया था।

धनपतरायने उसे पढ़कर लड़की के तस्वीर की माँग की। उन दिनों देहात में तस्वीर नहीं उतारते थे, लेकिन देवीप्रसादजीने लड़की की तस्वीर खींचकर कानपुर भेजी। उसकी तस्वीर देखकर उन्होंने अपने मित्र दयानारायण से चर्चा की और अपनी पसंदी भेज दी। देवीप्रसाद उन्हें देखना चाहते थे। अत: उन्होंने उसे फतेहपुर बुला लिया। जब उन्होंने देखा तो दामाद के रूपमें तुरंत उन्हें पसंद भी किया और इसतरह सन् १९०६ में धनपतराय की दूसरी शादी बाल विधवा शिवरानी देवी से हो गयी।

सन् १९०७ में उन्होंने अपनी सबसे पहली छोटी कहानी लिखी " दुनिया का सबसे अनमोल रतन ।" इसके साथ ही इसी साल "गैरीबाल्डी" का एक छोटासा जीवनचरित्र भी " जमाना " पत्रिकामें लिखा। उसमें गैरीबाल्डी के बहादूरी के कारनामों से भरी हुई जिन्दगीका वर्णन किया गया है। साथ ही साथ " शेख मखमूर ", " यही मेरा वतन है ", " सांसारिक प्रेम और देशप्रेम ", दुनिया का सबसे अनमोल रतन ", " सिल्-ए-मातम " इन कहानियोंका एक संग्रह " सोजेवतन " नामसे प्रकाशित हुआ। इस संग्रहकी सभी कहानियाँ देशप्रेम की उत्कट भावनासे परिपूर्ण होनेके कारण अंग्रेज सरकार पर इसकी गंभीर प्रतिक्रिया हुई और कलेक्टर ने उन्हें कहा, -----

" अगर अंग्रेजी राज में तुम न होते तो आज तुम्हारे दोनों हाथ कटवा लिये गये होते। तुम कहानियोंद्वारा विद्रोह फैला रहे हो। तुम्हारे पास जितनी कापियाँ हो, उन्हें मेरे पास भेज दो। आइंदा फिर कभी लिखनेका नाम भी न लेना। "१

१] शिवरानी देवी - प्रेमचन्द:घरमें, पृष्ठ २१, संस्करण १९५६।

और उस कहानीसंग्रह की ७०० प्रतिलिपियाँ कलेक्टरने अपने आदेशसे जलाकर भस्म कर दी।

सन् १९०८ में उनकी नियुक्ति " सब डिप्टी इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स " के पद पर महोबामें हो गयी। जिसके कारण उन्हें गांव-गांव घूमना पड़ता था। स्कूलोंके मुआइनेका काम अब उन्हें मिला था। काम के लिए बैलगाड़ी या घोड़ेपर जाना पड़ता था। स्कूलोंके मुआइनेका काम जिस गांवमें होता वहां किसी खुले मैदानमें तंबू लगाया जाता और सारे गांवमें इन्स्पेक्टर साहब आने की खबर फैल जाती। स्कूल के इन्स्पेक्टर होनेके नाते सभी देहाती लोग उनको खुश रखना चाहते थे। मुआइनेके लिए उन्हें अनेक गांवोंमें जानेका और वहांके लोगोंकी (जिंदगीको) सूक्ष्मदृष्टि से देखनेका मौका मिला था, जो किसी अन्य नौकरीसे नहीं मिल सकता था। मुआइने का काम थोड़े ही समयमें पूरा हो जाता और उनके पास काफी समय बच जाता था। अत: वे बचा हुआ सारा समय उस गांवके लोगोंके जीवनको सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेमें व्यतीत करते थे।

सन् १९०५ से लेकर १९०९ तक वे कानपुरमें ही रहे। उसके बाद नौकरी के कारण उन्हें महोबा जाना पड़ा। यहां भी स्कूल के मुआइने का ही काम था।

" सोजेवतन " कहानीसंग्रह की प्रतिलिपियाँ सरकार द्वारा नष्ट किये जानेके कारण उन्होंने '- - -' " प्रेमचन्द " नामसे लिखना शुरू किया। प्रेमचन्द यह नाम दयानारायण निगमजीने पेश किया। इसी उत्तरमें उन्होंने दयानारायणजी को लिखा था, -----

" प्रेमचन्द अच्छा नाम है। मुझे भी पसंद है। अफसोस सिर्फ यह है कि, पांच-छ: सालमें " नवाबराय " को फरोग देनेकी जो मेहनत की गयी, वह सब अकारथ हो गयी। यह हजरत किस्मत के हमेशा लंडूरे रहे और शायद रहेंगे।---"[१]

सन् १९१० में उन्होंने " जमाना " पत्रिकामें " प्रेमचन्द " नामसे सबसे पहली कहानी लिखी " बड़े घर की बेटी " और यहीं से आगे "प्रेमचन्द" नाम प्रसिध्द हुआ।

१] अमृतराय - प्रेमचन्द कलम का सिपाही, पृष्ठ ११३, प्रथम संस्करण १९६२।

सन् १९१२ में प्रेमचन्द का " जलवए-ईसार " नामक उर्दू उपन्यास प्रकाशित हुआ, जो आगे चलकर वरदान नामसे सन् १९२१ में हिन्दीमें प्रकाशित हुआ। इसी बीच उन्होंने " प्रेमपचीसी " उर्दू कहानीसंग्रह की रचना की। इनमेंसे अधिकांश कहानियाँ राजपूतों की वीरता पर आधारीत हैं।

वे सन् १९१४ तक महोबामें रहे। यहाँ उन्हें आखिरी डेढ़ सालमें पेचिश की बीमारी लग गयी। जिसके कारण वे डाइरेक्टर से मिले और तबादले की विनती की। उनकी विनती सुनकर डाइरेक्टरने उन्हें बस्ती जिलामें " डिप्टी इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स " के पदपर भेजा गया। लेकिन यहाँ पेचिशकी बीमारी अधिक हो गयी और यह अंततक उनका पीछा करती रही। इसी साल उनका " प्रेमपचीसी " [भाग १] कहानीसंग्रह उर्दूमें प्रकाशित हुआ। साथही साथ " अनाथ लड़की ", " खून सफेद ", " गैरत की कटार ", " मरहम ", " शिकारी और राजकुमार " आदि कहानियाँ भी प्रकाशित हो गई।

सन् १९१५ में उन्हें बस्ती जिलेमें गवर्नमेन्ट स्कूलमें सहायक अध्यापक के पदपर नियुक्त किया गया। यहाँ वे तीन सालतक इसी पदपर रहे। यहाँसे इन तीन सालों में उनकी रचनाएँ नियमित रूपसे कानपुर [प्रताप] और इलाहाबाद [सरस्वती] पत्रिकाओंमें से प्रकाशित होती रही। बस्तीमें रहकर इसके साथही साथ उन्होंने "धोखा", "दोभाई", "बेटी का धन", "पंच परमेश्वर", "जुगनू की चमक", "शंखनाद" आदि कहानियाँ भी लिखी।

सन् १९१६ में प्रेमचन्दने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से " इन्टरमीडिएट" की परीक्षा बहिस्थ: रूपसे पास की। इन दिनों वे विशेषत: सरस्वती पत्रिका में लिखते थे। उर्दू अखबारों और किताबोंसे आमदनी भी अधिक नहीं होती थी। जिसके कारण उनका झुकाव हिन्दी की ओर बढ़ता गया। इसी समय उनकी मुलाकात पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी से हुई और कुछ ही दिनोंमें उन दोनोंमें आत्मीयता बढ़ गयी। इनको हिन्दी की ओर खिंचनेका गजपुरीजी का भी काफी हाथ रहा है।

सन् १९१७ में उन्होंने " बाजारेहुस्न " उपन्यास लिखना शुरू किया। साथ ही साथ " सप्त-सरोज " और " नवनिधि " इन दो कहानीसंग्रहोंका प्रकाशन भी किया और उनकी " महात्मा शेखसादी " यह जीवनी भी प्रकाशित हो गयी।

इसी वक्त उन्होंने " ईश्वरीय न्याय ", " राजपूत की बेटी ","मशाल-ए-हदायत" " दुर्गा का मंदिर " आदि कहानियोंकी रचना की।

सन् १९१८ में उनका तबादला बस्तीसे गोरखपुर हो गया। इसी समय उनके उर्दू"प्रेमपचीसी"[भाग २] और "प्रेमपूर्णिया" कहानीसंग्रह प्रकाशित हो गया।

उनके " बाजारे हुस्न " उपन्यासको हिन्दीमें रूपान्तरित कर उसका नाम " सेवासदन " रखा गया और सन् १९१९ में कलकत्ते के " हिन्दी पुस्तक एजन्सी " व्दारा इस उपन्यास को प्रकाशित किया गया। उनका यह पहला उपन्यास था जो हिन्दीमें प्रकाशित हो गया। सन् १९१९ की फरवरीमें उनका एक लेख "दौरे कदीम : दौरे जदीद" [पुराना जमाना : नया जमाना] के नाम से "जमाना" पत्रिकामें प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने नयी समाज व्यवस्थाके दोषोंपर प्रहार किया है। इन्हीं दिनों उन्होंने " होली की छुट्टी " नामक कहानी लिखी। इस कहानीमें लड़ाईसे लौटा हुआ एक सिपाही पहले महायुध्दसे उत्पन्न विभिषिका के परिणामों का वर्णन करता है। इसी साल उन्होंने बी.ए. द्वितीय श्रेणीमें पास किया।

सन् १९२० में उनके " प्रेमबत्तीसी " [भाग १ और २] उर्दू कहानीसंग्रहों का प्रकाशन हुआ।

८ फरवरी १९२१ के दिन गोरखपुरमें गांधीजी का भाषण हुआ। इस भाषण को सुननेके लिए वे अपनी पत्नी और बच्चोंके साथ गये थे। गांधीजीका भाषण सुनकर उनके मनपर काफी असर पड़ा और उन्होंने १५ फरवरी १९२१ को नौकरी का इस्तिफा देकर वे अपने गांव "लमही" चले गये। यहां आते ही चरखा चलाने का प्रचार कार्य शुरु किया। साथही साथ वहां के किसानों को अपने कर्तव्योंके प्रति सजग करनेका काम भी वे करते रहे। यहां उनकी विमाता रहती थी। पत्नी और विमातामें हमेशा अधिकार को लेकर झगड़े होते रहे, जिसे तंग आकर वे फिर नौकरी की तलाशमें निकले। जुलाई १९२१ में उन्हें मारवाडी हायस्कूल कानपुर में नौकरी मिली, परंतु वहां उस हायस्कूल के मैनेजर काशीनाथजी के साथ मतभेद होनेपर उन्होंने फिरसे नौकरीका इस्तिफा देकर बनारस चले आये। यहां शिवप्रसाद गुप्त हिन्दीमें एक मासिक पत्रिका " मर्यादा " नामसे निकालते थे। जिसके सम्पादक बाबू →

सम्पूर्णानन्द थे, जो असहयोग आंदोलनमें जेल चले गये। उनकी गैरहाजिरीमें डेढ़साल तक वे काम करते रहे। इन डेढ़ सालोंमें उनकी " अधिकार चिंता ", " नागपूजा ", " विध्वंस ", " स्वत्वरक्षा ", " सुहाग की साड़ी ", " हार की जीत " आदि कहानियाँ प्रकाशित हो गईं। उसके बाद वे काशी विद्यापीठ में अध्यापक के पदपर नियुक्त हो गये। लेकिन वहाँ भी प्रधानाध्यापक के साथ मतभेद होनेके कारण नौकरी छोड़ दी और स्वयं प्रकाशन कार्य करनेका निश्चय किया। इन्हीं दिनों उन्होंने " विचित्र होली ", " प्रेरणा ", " लाल फिता " नामक कहानियाँ लिखी। साथही साथ " प्रेमाश्रम " नामक उपन्यास का प्रकाशन भी किया।

सन् १९२३ में जब वे अपने किसी कामके लिए कानपुर गये थे, तो वहाँ "प्रताप" कार्यालय में गणेश शंकर नामक एक विद्यार्थी प्रेसमें काम करता हुआ मिला। वह विद्यार्थी अधिकसे अधिक काम अपने हाथोंसेही करता हुआ देखकर उससे वे बहुतही प्रभावित हुए वहांसे घर लौटनेपर उन्होंने अपनी पत्नीके सामने उस विद्यार्थी की प्रशंसा करते हुए स्वयं भी नौकरी छोड़कर प्रेस खोलनेकी इच्छा प्रकट की। उनकी यह इच्छा सन् १९२३ में बनारस में 'सरस्वती' प्रेसकी स्थापना करके पूरी हुई। वे जो लिखते थे वह लोगों के पास जल्दि पहुँचाना चाहते थे। इसी उद्देश की पूर्तिके लिए उन्होंने प्रेसकी स्थापना की थी। परंतु दुर्भाग्यवश प्रेसके साझीदार अलग हो जानेके कारण सारी जिम्मेदारी उनपर आ पड़ी और काफी नुकसान भी हुआ। जिसके बारेमें वे एक पत्रमें लिखते हैं,--

" प्रेसने मुझे इस कदर परेशान कर रखा है कि, मैं तंग आ गया हूँ।---मैंने सोचा था कि सितंबर-अक्तूबर तक दोनों किताबें तैयार हो जायँगी। ["कर्बला" और "प्रेमपचीसी" कहानीसंग्रह] बकाया वसूल हो जाएगा। किताबे बिक जायँगी। रुपयेकी किल्लत रफा हो जायेगी। मगर वह सारे मंसूबे परीशान हो गये। न किताबें तैयार हुई न बकाया वसूल हुआ, बल्कि हर महिने में कुछ न कुछ बढ़ता गया। अब यही कोशिश कर रहा हूँ कि किसी तुल्लेवर से मुआमला करके यह सब छपी हुई जिल्दें लागत पर देकर अपने तकाजेदारों को अदा कर दूँ। "[1]

प्रेस की हालत खराब थी। वे स्वयं दिन-रात काम करते थे। यह बात शिवरानी देवी को अच्छी नहीं लगती थी। प्रेसको काम देनेके लिए उन्होंने " माधुरी " पत्रिका का सम्पादन भी किया। साथही "हंस" पत्रिका और " जागरण" पाक्षिक पत्र भी

१] अमृतराय - प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृष्ठ ३४९, प्रथम संस्करण १९६२।

शुरू किया। लेकिन उनका यह प्रयास भी असफल रहा।

सन् १९२३ में इनका " संग्राम " नाटक प्रकाशित हुआ। इस नाटक की कथावस्तु सामाजिकता और असहयोग आन्दोलन पर आधारित है। इसीसमय उन्होंने अपनी " मुक्तिमार्ग ", " वज्रपात ", "विधवा ", "नैराश्यलीला ", " परीक्षा ", " लोकमत का सम्मान", " कहतुर्रिजाल " [मनुष्यता का अकाल], "बौड़म", " हजरत अली ", " नबी का नीति निर्वाह " आदि कहानियों की और " कर्बला " नाटक की भी रचना की।

सन् १९२४ को उनके " रंगभूमी " इस उपन्यास का उर्दू मसौदा " चौगाने हस्ती " के नामसे लिखकर पूरा हो गया। इसी साल उनका " कर्बला " नाटक और " रंगभूमी "[चौगाने हस्ती] उपन्यास प्रकाशित हुए। " चौगाने हस्ती " इस उपन्यास को हिन्दीमें रूपांतरित करके " रंगभूमि " नामसे प्रकाशित किया गया।

सन् १९२४ और १९२५ के बीच " कायाकल्प " इस उपन्यास को लिखा। आरंभमें इस उपन्यास के तीन नाम रखे गये ---"आर्तनाद", "असाध्य साधना", "मायास्वप्न" परंतु अंतमें इसे " कायाकल्प " नामसे ही प्रकाशित किया गया। इसीसमय उनके मित्र रामचंद्र टंडनके कहनेपर उन्होंने अनातोल फ्रांसकी अमर कृति "थायस" का और रतननाथ सरशार के " फसाने-ए-आजाद " का रूपांतर "आजाद कथा" नामसे हिन्दी में किया। साथही "न्याय", "सवासेर गेहूँ","सभ्यता का रहस्य", "शतरंज के खिलाड़ी", "मंदिर और मसजिद", " मुक्तिधन", "क्षुद्र" , "धिक्कार", "भाड़े का टट्टू", "गुप्तधन" आदि कहानियों की रचना कर प्रकाशित भी किया।

सन् १९२६ में वे गंगा पुस्तकमाला में सलाहकारके रूपमें काम कर रहे थे। उस समय उपाध्याय नामक एक व्यक्ति अपना एक उपन्यास लेकर उनके पास छपवाने के लिए गये। उन्होंने उसे पढ़कर अस्वीकार कर दिया। जिसके कारण जुलाई १९२६ से लेकर दिसंबर १९२६ तक उपाध्यायजीने उनके संपूर्ण कृतियोंपर कीचड़ उछालने का काम किया। उन्होंने प्रेमचन्दके " रंगभूमी " उपन्यासको थैकरे के " वैनिटी फेअर" और " प्रेमाश्रम " उपन्यासको टॉलस्टाय के " रिजरेक्शन " की नकल सिध्द करनेका असफल प्रयत्न किया। इतनाही नहीं बल्कि " कायाकल्प " को हाल केन के " इटर्नल सिटी " की नकल माना लेकिन जिस समय उपाध्यायजी " प्रेमाश्रम " को

"रिजरेक्शन" की नकल सिध्द करनेका प्रयास कर रहे थे उसी समय "रिजरेक्शन" के लेखक टॉलस्टाय के देशमें "प्रेमाश्रम" का अनुवाद रूसी भाषामें हो रहा था और रूसी भाषामें अनूदित होनेवाली प्रेमचन्द की यह पहलीही रचना थी। इसी साल " हिन्दूस्तानी एकेडमी " ने " रंगभूमी " को उस वर्षकी सर्वश्रेष्ठ कृति का पुरस्कार दिया। बादमें जब प्रेमचन्दकी मृत्यु हुई तब इस महाशय को पश्चाताप हुआ और वे पश्चातापसे दग्ध होकर अपने एक मित्रको पत्रमें लिखते हैं, ------

" इस दु:खद समाचार ने मेरे हृदय को मथ डाला, मैं रो उठा क्योंकी मेरे हृदयमें एक कसक रह गयी। मैंने प्रेमचन्द के सब ग्रन्थों का अध्ययन किया था और मैं भली-भाँति उनके गुणोसे परिचित था। वास्तवमें हिन्दी भाषा का एक स्तंभ टूट गया, हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक उठ गया, आज हमारे उपन्यास सम्राट का देहावसान हो गया। परन्तु उनकी अमर कीर्ति की ध्वजा सदा फहराती रहेगी। मैं आज निस्संकोच भाव से कह रहा हूँ कि, अपनी लेखनी के व्दारा आजतक हिन्दीका कोई भी दूसरा लेखक प्रेमचन्द की तरह प्रसिध्द नहीं हो सका। भाषा प्रेमचन्दकी दासी-सी बन गयी थी। उसे वे जैसे चाहते थे नचाते थे। मानव हृदय का ज्ञान भी उन्हें बहुत था। मेरा पूर्ण विश्वास हैं कि, उनकी कृतियोमें अमर साहित्यकी सामग्री है।--"[१]

इसी साल उनका " कायाकल्प " यह उपन्यास और हिन्दीमें " प्रेम-व्दादशी " " प्रेम-प्रमोद ", " प्रेम-प्रतिमा " ये कहानीसंग्रह और " लांछन", " अहिंसा परमोधर्म" आदि कहानियाँ प्रकाशित हो गई।

सन् १९२७ में उनका नारी समस्या पर आधारित " निर्मला " विधवा विवाह समस्यापर " प्रतिज्ञा " उपन्यास और " तुजान भगत ", एक्ट्रेस", " माँगे की घड़ी " आदि कहानियाँ प्रकाशित हो गई। इसी साल उन्होंने " माधुरी " पत्रिका की " एडिटरी " का काम संभाला।

सन् १९२८ में उनकी " मोटेराम शास्त्री " नामक एक कहानी " माधुरी " पत्रिकामें प्रकाशित हो गई। जिसमें एक पेट की खिल्ली उड़ाई गई हैं। इस कहानी को पढ़कर पंडित शालीग्राम शास्त्री नामक एक पेट को यह भ्रम हो गया कि,

---

१] अमृतराय - प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृष्ठ ३८८ , प्रथम संस्करण १९६२।

" मोटेराम शास्त्री " कहानी उनपर ही लिखी गई है। इसलिए उन्होंने "माधुरी" के संपादक पर अदालत में दावा दाखिल किया। संपादकने अदालतमें ये कहानी एक "व्यंग्य प्रहसन" है इस बातका विश्वास दिलाया। तब शास्त्रीजी का भ्रम अपने आप मिट गया। इसी साल उनके दो कहानीसंग्रह " प्रेमतीर्थ " और "गल्पसमुच्चय" हिन्दीमें और " खव्वातोखयाल " यह कहानीसंग्रह उर्दूमें प्रकाशित हुआ और टोकिओ की " काइजो " [पुनर्निर्माण] पत्रिका जो जापानकी ही नहीं पूरे संसार की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के रूपमें उसकी गिनती होती थी इसमें " मुक्तिमार्ग ", " मंत्र ", नामक कहानियाँ प्रकाशित हो गई। साथही " पिसनहारी का कुआँ ", " उन्माद ", " अभिलाषा ", " सम्पादक ", "विद्रोही", " दारोगाजी ", " प्रायश्चित ", " सुहाग का शव " आदि कहानियोंकी रचना की और " चौगाने हस्ती " [रंगभूमी] गोशाए आफियत " [प्रेमाश्रम] ये दो उपन्यास प्रकाशित हो गये।

सन् १९२९ में हिन्दुस्तानी एकेडमीमें उन्होंने गाल्सवर्दी के नाटक " स्ट्राईक " का अनुवाद और " गबन " उपन्यास लिखना शुरू किया। इसके अतिरिक्त " प्रेम-चतुर्थी ", " प्रेम प्रतिज्ञा " और पाँच फूल " ये कहानीसंग्रह हिन्दीमें प्रकाशित किये।

सन् १९३० में उन्होंने " समरयात्रा " कहानीसंग्रह प्रकाशित किया तो १० मार्च १९३० को " हंस " यह साहित्यिक राजनीतिक मासिक पत्र " सरस्वती " प्रेससे निकालना प्रारंभ किया। २५ मार्च को गांधीजी की डाँडी यात्रा शुरू हुई। उसके पंद्रह दिन पहले उन्होंने " हंस " का पहला अंक निकाला। इस पत्रिका के बारेमें वे कहते हैं, -------

" हंस के लिए यह परम सौभाग्यकी बात है कि, उसका जन्म एक ऐसे शुभ अवसर पर हुआ है, जब भारतमें एक नये युगका आगमन हो रहा है, जब भारतकी स्वराधीनता की बेड़ियोंसे निकलनेके लिए तड़पने लगा है। इस तिथि की यादगार एक दिन देशमें कोई विशाल रूप धारण करेगी। "१

इसी साल उनके " प्रेमपचीसी " [भाग १ और २] कहानीसंग्रह उर्दूमें प्रकाशित हो गये।

सन् १९३१ में उनका " गबन " उपन्यास और " प्रेम-प्रतिमा" कहानीसंग्रह

१] अमृतराय - प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृष्ठ ४५४, प्रथम संस्करण १९६२।

प्रकाशित हुआ तो " पर्दे-ए-मिजाज " उपन्यास उर्दूमें प्रकाशित किया।

सन् १९३२ में हिन्दीमें " कर्मभूमि " और उर्दूमें " मैदा " उपन्यास प्रकाशित किया। इससमय उनके सरस्वती प्रेस की हालत बहुतही खराब थी। उन दिनों बार-बार अखबारोंसे जमानत माँगी जाती थी। इसके बारेमें वे अपने मित्र जैनेंद्रको लिखते हैं, -----

"--- हंस पर जमानत लगी। मैंने समझा था आर्डिनेंस के साथ जमानत भी समाप्त हो जायगी। पर नया आर्डिनेंस आ गया और उसीके साथ जमानत भी बहाल कर दी गयी। --- अब मैंने गवर्नमेंन्ट को एक स्टेटमेंट लिखकर भेजा है। अगर जमानत उठ गयी तो पत्रिका तुरन्त ही निकल जायगी। छप, कट, सिलकर तैयार रखी है। अगर आज्ञा न दी तो समस्या टेढ़ी हो जायगी। मेरे पास न रूपये हैं, न प्रामेसरी नोट, न सिक्योरिटी। किसीसे कर्ज लेना नहीं चाहता। यह शुरू साल है, चार-पाँच सौ वी.पी. जाते, कुछ रूपये हाथ आते। लेकिन वह नहीं होना है। "[१]

साप्ताहिक पत्र निकलनेके प्रलोभनके कारण घाटा होते हुए भी वे " हंस " पत्रिकाको बंद करना नहीं चाहते थे। " जागरण " पत्रिका के बारेमें वे स्वयं लिखते हैं, ----

"---- इसमें कई हजारका घाटा उठा चुका हूँ। लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि, सर्वसाधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हजारोंका घाटा ही होगा, पर करूँ क्या, यहाँ तो जीवनही एक लम्बा घाटा है। "[२]

सन् १९३३ में हिन्दीमें उनका " प्रेम की वेदी " नाटक और " प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ " कहानीसंग्रह प्रकाशित हुआ।

सन् १९३४ में बंबईकी अजंता सिनेटोन फिल्म कंपनीने " सेवासदन " उपन्यास पर फिल्म निकालने के लिए उन्हें बुलाया और साढ़े सात सौ रूपये देकर " बाजारे हुस्न " इस उर्दू नामसे घटिया फ़िल्म निकाली जो उन्हें पसंद नहीं थी। परंतु इसीसमय के. सुब्रम्हण्यम ने इसपर तामिलमें फिल्म बनाई जिसे लोगोंने बहुतही पसन्द

१] अमृतराय - प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृष्ठ ५०३, प्रथम संस्करण १९६२।

२] अमृतराय - प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृष्ठ ५०२, प्रथम संस्करण १९६२।

किया। इसके बाद उन्होंने फिल्मके लिए " मिल मजदूर " नामक कहानी लिखी जिसमें मिल-मालिक और मजदूरोंके संघर्षका चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त " डामलका कैदी " कहानी लिखकर " गरीब मजदूर"नामसे फिल्म निकाली। इसके बाद उन्होंने " नवजीवन " और " गैरदीन औरत " ये दो कहानियाँ फिल्मकी दृष्टिसे लिखी लेकिन उनकी इच्छा के अनुसार इन दो कहानियोंपर फिल्म न बननेके कारण वे निराश हो गये। इसके बारेमें वे अपनी पत्नीको कहते हैं, ----

" यहाँ जो कुछ है, सिनेमा के मालिक लोगोंके हाथमें हैं। लेखक को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, वह तो हमेशा कमाना जानते हैं। "[1]

सन् १९३४ में उन्होंने " मनोवृत्ति ", " बालक ", " दूध का दाम ", "नया विवाह ", " मुक्त का यश ", " ईदगाह " आदि खूबसूरत कहानियोंकी रचना की।

उनकी इच्छाके अनुसार फिल्म न होनेके कारण ४ अप्रैल १९३५ में फिल्म कंपनीका कॉन्ट्रक्ट पूरा होनेसे पहले ही वे बंबई छोडकर " लमही " आ गये। इसी साल उनकी " जीवनसार ", " नादरी ", " कफन " आदि हिन्दी कहानियाँ और " मैदाने अमल " उर्दू उपन्यास प्रकाशित हुआ।

सन् १९३६ में उनका " गोदान " उपन्यास प्रकाशित हुआ। २४ अप्रैल को प्रेमचन्द " भारतीय साहित्य परिषद " के अधिवेशन के लिए नागपुर गये थे, जो कि उनका पहला और अंतिम अधिवेशन था। इस अधिवेशन के अध्यक्ष महात्मा गांधी और सम्मेलन के सभापति पं. नेहरू थे। इससमय प्रेमचन्दने " हंस " पत्रिकाको परिषद को सौंप देनेका प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को साहित्य परिषदके मुखपत्रके रूपमें स्वीकृत तो किया गया, लेकिन परिषदने " हंस " पत्रिकाको प्रकाशित करनेका काम दिल्लीके सस्ता साहित्य मंडल को देनेका निर्णय लिया। परन्तु यहाँ जानेसे पहले सेठ गोविन्ददास का " सिध्दान्त स्वातंत्र्यको लेकर " इस नाटकपर सरकार ने जमानत की माँग की, जिसे परिषद ने भरनेसे इन्कार कर पत्र बन्द करनेकी घोषणा की। इससमय प्रेमचन्द बहुतही बीमार थे। यह बात सुनकर उनको बहुतही दु:ख हुआ और उन्होंने पूरी जमानत भरकर पत्र अपने अधिकारमें लेकर जारी रखा।

इन्हीं दिनों उनकी बीमारी बढ़ जानेके कारण इलाज करनेके लिए उन्हें लखनऊ

१] इंतराज रहबर - प्रेमचन्द : व्यक्तित्व, कला और कृतित्व, पृष्ठ १२९, दूसरा संस्करण १९६२।

जाना पड़ा। पूरी जाँच के बाद जलोदर और जिगरका सख्त पड़ जाना [सिरोसिस ऑफ लिव्हर] निदान हुआ। ठीक होनेकी उम्मीद रखकर और भी दो-एक डॉक्टरोंको दिखाया जिन्हें काफी पैसा खर्च हो गया। लेकिन कमजोरी कम नहीं हो सकी। जितने पैसे लेकर गये थे वे सब खर्च हो गये। दिन-ब-दिन हालत बिगड़ती गयी। एकतरफ उनकी बीमारी बढ़ रही थी, तो दूसरी तरफ प्रगतिशील लेखक संघके प्रथम अधिवेशनमें साहित्यद्वारा राजनीति के प्रगतिशील आन्दोलन को, स्वतंत्रता संग्रामको आगे बढ़ानेकी जो घोषणा की गई थी उसे वे कार्यान्वित करना चाहते थे, और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्होंने " मंगलसूत्र " उपन्यास लिखना प्रारंभ किया लेकिन बहुतही दुःख की बात है कि, अधिवेशन के थोड़ेही दिनोंके बाद उनकी बीमारी अधिक हो गयी और इस महान कलाकार को वह उपन्यास पूरा करनेका अवकाशही प्राप्त नहीं हो सका। इस बीमारीसे वे स्वस्थ नहीं हो सके। वे खाटपर ऐसे लगे कि, फिर छोड़नेकी नौबतही नहीं आयी और आखिर ८ अक्तूबर १९३६ को एक क्रियाशील शक्ति का अन्त हो गया। इसतरह संसारका रूप निखारनेवाली लेखनी रुक गयी और जीवन को प्रज्वलित करनेवाला दिपक हमेशाके लिए बुझ गया।

****